आदर्श की कैद और रिहाई का रास्ता

❑ पंकज बिष्ट

मैं सबसे पहले यह स्वीकार कर लेना चाहता हूं कि मैंने बच्चों के साहित्य पर कभी गंभीरता से नहीं सोचा है। सच तो यह है कि इस संबध में मेरा कोई अध्ययन है ही नहीं। हां मेरी इच्छा सदा बच्चों के लिए लिखने की रही है और मैंने बच्चों के लिए एक उपन्यास लिखा है। (मैं अरविंद कुमार का आभारी हूं कि उन्होंने यह मुझसे जबर्दस्ती लिखवा लिया।)। अजीब बात यह है कि इस बीच मेरे दिमाग में बच्चों की कहानियों के तो कई प्लॉट हैं पर तथाकथित वयस्क साहित्य मेरे दिमाग से लगभग बाहर है। इसके क्या कारण हैं फिलहाल मैं इस पर नहीं जाना चाहता पर कुल मिला कर निवेदन यह है कि मेरी इस टिप्पणी को एक सामान्य अवलोकन या सवालनुमा टिप्पणी से ज्यादा कुछ न माना जाए।

मैं अपना बचपन याद करता हूं तो एक भी ऐसी कहानी याद नहीं पड़ती जो बच्चों के लिए लिखी गई हो और समकालीन संदर्भ में रही हो। ईमानदारी की बात यह है कि जो कहानियां याद रही हैं वे कमोबेश संस्कृत वांग्मय की हैं। इन में पहला नंबर पंचतंत्र और दूसरा महाभारत और रामायण का है। जहां तक मेरा संबंध है महाभारत की कहानियों ने मुझे पंचतंत्र की कहानियों से भी ज्यादा आकर्षित किया है। 'चंदामामा' और 'मनमोहन' उन दिनों की चर्चित बाल पत्रिकाएं थीं। मनमोहन अपेक्षाकृत आधुनिक था। चंदामामा कमोबेश पौराणिक कहानियों का ही चर्बा हुआ करती थी और है, जो बहुत ही भौंड़े तरीके से (अपने इकहरे रेखांकनों से तो और भी ज्यादा) भारतीय संस्कृति, उसके मूल्यों और परंपराओं को अपनी हर पंक्ति से मजबूत करती थी और करती है। हां, पश्चिमी बाल साहित्य से एलिस इन वंडरलैंड, गुलिवर्स ट्रेवल, काउंटी आफ माउंटी क्रिस्टो और ईसप की कथाएं आदि जैसी कुछ रचनाओं का अनुवाद जरूर था, पर वह भी अक्सर बहुत ही लापरवाही से किया गया था। मैंने एलिस इन वंडरलैंड का शमशेर जी वाला अनुवाद नहीं देखा है इसलिए उसके बारे में कुछ कहने की स्थिति नहीं है। एक तो वह बहुत प्रचलित नहीं था दूसरा कम से कम वह मेरे बाल्यकाल में तो उपलब्ध नहीं था। किशोर साहित्य जैसा तो हिंदी में कभी कुछ था ही नहीं और मैंने बहुत ही जल्दी 13-14 वर्ष की उम्र में ही - तथाकथित वयस्क साहित्य पढ़ना शुरू कर दिया था। यह वयस्क साहित्य भी बड़ा अजीब था : सस्ते जासूसी उपन्यास और हां गोर्की का मेरा बचपन।

अजीब बात है कि हिंदी में बच्चों को विषय बना कर लिखने की परंपरा तो तुलसीदास-सूरदास से लेकर सुभद्रा कुमारी चौहान, मन्नू भंडारी और स्वयं मुझ तक बरकरार है पर बच्चों के लिए लिखने की परंपरा लगभग गायब है। बच्चे हमारा विषय तो हैं पर ऐसा लगता है जैसे हम उनकी कल्पनाशीलता व रचनात्मक ऊर्जा के विस्तार और संवर्द्धन तथा उसके साथ भागीदारी करने से बचते रहे हैं। अगर यह सायास नहीं है तो भी सवाल है आखिर ऐसा क्यों है ? इसका कारण हमारी मानसिक बनावट में तो नहीं है ? क्या यह इसलिए है कि हम एक ऐसे समाज का हिस्सा हैं जिसमें परंपराओं और अनुशासन का इतना दबाव है कि वह किसी भी तरह

की कल्पनाशीलता, मौलिकता और स्वतंत्र चिंतन को महत्त्व देना तो रहा दूर, उल्टा इस तरह की किसी भी प्रवृत्ति को खतरा मानता है ? तो क्या यह माना जाए कि हिंदी साहित्यकार कमोबेश उस पितृसत्तात्मक व्यवस्था का कमोबेश पोषक है जो संस्कृति, परंपरा और मूल्यों का ढिंढोरा पीटती है ? या हर लेखक की चिंता एक आदर्श भारतीय परिवार है जिसमें वह किसी तरह का विरोध - विद्रोह बल्कि कहना चाहिए किसी तरह का डेवियेशन (विचलन) नहीं देखना चाहता ? जिसमें वह सिर्फ एक आदर्श हिंदू (चाहें तो भारतीय कह सकते हैं) बेटा या बेटी देखना चाहता है। वह श्रवण कुमार चाहता है और चाहता है राम। इसके सिवा कुछ नहीं चाहता।

देखने वाली बात यह है कि अच्छा बाल साहित्य अपनी कल्पनाशीलता से कमोबेश परंपरा को तोड़ने की ओर ले जाता है, कम से कम मुझे ऐसा लगता है। क्योंकि बाल साहित्य के आधारभूत तत्व वही होते हैं जो कि श्रेष्ठ साहित्य के। यह कहने की जरूरत नहीं है कि साहित्य आप को संतोषी (कंप्लीसेंट) या अदूरदर्शी (मायोपिक) नहीं बनाता। इसका मूल सरोकार भविष्य होता है। जो अंतर इन दोनों में हो सकता है वह संभवत: कल्पना की उड़ान और उसके खुले खेल का है। अक्सर कल्पना के रंग वयस्क साहित्य को बाल साहित्य के निकट पहुंचा देते हैं और चिंतन व सरोकार की अंतर्धारा बाल साहित्य में तब्दील कर देने की क्षमता रखती है। इन अर्थों में बाल साहित्य के पात्र कहीं न कहीं उसी वयस्क वर्चस्व और उसकी श्रेष्ठता को चुनौती दे रहे होते हैं जिससे कि अच्छा साहित्य टकरा रहा होता है। दूसरे अर्थों में उसे बच्चों को परंपरागत समाज की सीमाओं को तोड़कर एक स्वतंत्र राह देने की चेष्टा कहा जा सकता है।

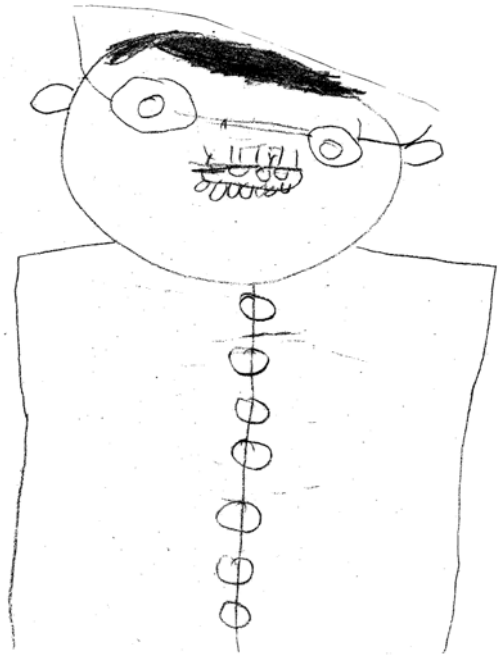

तो क्या एक परंपरागत समाज होने के नाते हम यह मान बैठे हैं कि बच्चों का साहित्य या तो पंचतंत्र होगा जो प्रत्यक्ष रूप से नीति कथा है या फिर लोक कथाएं जो अपनी कल्पनात्मक सघनता में बाल साहित्य के काफी नजदीक पड़ती हैं, पर हैं मूलत: नीति कथाएं ही ? असल में पौराणिक कथाओं का बच्चों के लिए रह-रह कर पुनर्लेखन कहीं न कहीं हमारी उसी परंपरागत मंशा को दिखलाता है जो बच्चों को स्थापित समाज के मूल्यों को मानने को तो प्रेरित करता है पर उसे पार करने या उसकी जकड़बंदी के उत्पीडन से निकल कर एक नए संसार को बनाने की प्रेरणा नहीं देता।

एक और क्षेत्र ऐसा है जिसके लिए बाल साहित्य का हमारे यहां जबर्दस्त दोहन हुआ है और वह है तथाकथित देशभक्ति। देशभक्ति अपने आप में एक ऐसा तत्व हो सकता है जो किसी भौगोलिक भूखंड की जनता को राजनीतिक हितों के मद्दे नजर जोड़कर रखने के लिए जरूरी होता है पर यह एक ऐसा तत्व भी है जो हमें अपने से बाहर देखने से रोकता है और इस मामले में इसके दुष्परिणाम दूरगामी होते हैं।

असल में देखा जाए तो बाल साहित्य का स्वर्णयुग लगभग समाप्ति की ओर है। इलैक्ट्रानिक माध्यमों ने स्थिति में आधारभूत परिवर्तन कर दिया है। बच्चों के पास कैरियर की चिंता के बाद जो समय बचता है उसपर लगभग टी. वी., इंटरनैट आदि इलैक्ट्रानिक माध्यमों ने कब्जा कर लिया है। एक और समस्या यह भी है कि मध्यवर्ग हिंदी या कोई भी भारतीय भाषाएं अपने बच्चों को पढ़ाना नहीं चाहता इसलिए भी अच्छे बाल साहित्य की कम से कम भारतीय भाषाओं में रचना की संभावना घटती जा रही हैं।

ऐसे में बाल साहित्य के सामने जो चुनौतियां हैं वे कई गुना कठिन हैं। बाल साहित्य के विषयों में ही नहीं बल्कि उसकी प्रस्तुति में भी मौलिक परिवर्तन की जरूरत है। आज का बच्चा टैक्नोलॉजी से जितना परिचित है और उसका जितना असर आज हमारे जीवन में है उसको किस तरह से समेटा जाए संभवत: यह बड़ी चुनौती है। हम वैज्ञानिक प्रगति और प्रौद्योगिकी को अब अनदेखा नहीं कर सकते सिर्फ देखना यह है कि यह हो तो कैसे हो ? यह कहते हुए मेरे दिमाग में कहीं न कहीं जे.के. राउलिंग के हैरी पॉटर का भूत भी काम कर रहा है। पर अंतत: यह तो देखना ही होगा कि बच्चों को किस तरह से न केवल पढ़ने को ओर प्रेरित किया जाए बल्कि उनकी कल्पना का विस्तार भी किया जाए जो आज की परिस्थितियों में जब कि कहीं भी कुछ भी असंभव-सा नहीं रह गया हो, बहुत कठिन है। ◆